नारी विमर्श

सीमा*

सहायक प्रोफसर, हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय मंगाली (हिसार), भारत

Email ID: *seemamakkar1989@gmail.com*

Accepted: 04.05.2022 **Published**: 01.06.2022

मुख्य शब्दः विमर्श, सशक्तीकरण, सामाजिक बुद्धिजीवी।

शोध आलेख सार

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श जिसमें नारी की अनेक समस्याएँ देखने को मिलती है। छायावाद काल से ही हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श का जन्म माना गया है। महादेवी वर्मा जी ने अपनी रचना 'श्रृंखला की कडिया' में नारी सशक्तिकरण का अति उत्तम उदाहरण दिया है। प्रेमचंद से लेकर आज तक अनेक पुरूषों ने भी स्त्री समस्या से सम्बन्धित विषय बनाया लेकिन पुरूष लेखक उसे वह रूप नहीं दे सके जो स्वयं महिला लेखिका दे सकती है। नारी विमर्श की शुरूआत पश्चिम में देखने को मिली। सन् 1960 में नारी सशक्तिकरण ने जोर पकड़ा जिसमें उषा प्रियवंदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी जैसी लेखिकाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। आज स्त्री–विमर्श एक ज्वलंत मुद्दा है।

पहचान निशान

**Corresponding Author*

आठवे दशक में स्त्री विमर्श ने आंदोलन का रूप ले लिया जो शुरूआती स्त्री विमर्श से ज्यादा शक्तिशाली प्रमाणित हुआ। आज महिला लेखिकाओं की बाढ़ सी आ गई जिसने पितृसता समाज को झकझोर दिया। नारी मुक्ति की गुंज अब देह मुक्ति के रूप में परिलक्षित होने लगा।

सामाजिक बुद्धिजीवियों और कार्यकर्त्ताओं के बीच लंबे समय से नारी विमर्श चर्चा और चिंता का विषय रहा है कि हिंदी लेखन में आज भी मौलिक लेखन काफी मात्रा में कम मौजूद है। स्त्री विमर्श की सैद्धांतिक अवधारणाओं के संदर्भ में प्रश्न यह उठता है कि हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श के मायने क्या है। साहित्य, कहानी, आलोचना, कविता कथा इत्यादि मानवीय संवेदनाओं की वाहक विद्या के रूप में देखा जाता है वह स्त्री को किस रूप में चित्रित करता है। क्या साहित्य स्त्री–विमर्श की मूल अवधारणाओं को रेखांकित कर उस पर आम जन के बीच संवेदना को विकसित कर पाने में सफल हो पाया है।

स्त्री के प्रश्न जीवन के केंद्रीय प्रश्न है। किन्तु हिंदी साहित्य की धारा में स्त्री प्रश्नों अथवा स्त्री मुद्दों को लगातार उपेक्षा की जाती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्त्री प्रश्न गायब है बल्कि स्त्री की उपस्थिति या तो यौन वस्तु या पितृसतात्मक मनोसंरचना अख्तियार किए होता है।

पितृसत्तात्मक परपरां में स्त्री प्रश्नों का हास होता दिख रहा है। क्या स्त्री–विमर्श को देह केंद्रित के समकक्ष रखकर स्त्री–विमर्श के दायित्वों का निर्वाह किया जा सकता है।

हिन्दी साहित्य नारी समस्या

छायावाद काल से ही हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श की शुरूआत मानी गई। वेदना के विभिन्न रूप महादेवी वर्मा की कविताओं में देखने को मिलता है। उनकी 'श्रृंखला की कडिया नारी शक्ति का उदाहरण है। इसमें नारी मुक्ति व नारी जागरण का प्रश्न उठाया गया है। प्रेमचन्द से लेकर 19वीं सदी तक के अनेक लेखकों ने नारी समस्या को उठाया है। लेकिन महिला लेखिकाओं ने जिस तरह नारी समस्या का वर्णन किया, ये उतना वर्णन ना कर सके। हिन्दी साहित्य में नारी मुक्ति की आवाज 1960 में पश्चिम में सुनाई दी। उषा प्रियवदां, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी व शिवानी इन लेखिकाओं ने नारी मन के छिपे भाव को पहचान कर अपने लेखन में इन्हें उतारा।

हिन्दी पद्य व गद्य में नारी विमर्श

पुरूष व स्त्री समाज के दो पहलू है। जो एक–दूसरे के पूरक है। एक के अभाव में दूसरे का कोई मूल्य नहीं है। इसके बावजूद भी पुरूष समाज ने महिला को अपनी बराबरी से वंचित रखा। इसी कारण स्त्रियों को आंदोलन करने पड़े जो आज ज्वलंत मुद्दा नारी–विमर्श के रूप में दृष्टिगोचर है। प्राचीन काल से ही नारी की दशा दयनीय थी। स्त्रियों को देखकर दयानन्द कहते है– ''स्त्रियों की दशा को सुधारे बिना जगत के कल्याण की कोई सम्भावना नहीं है।[1]

विवेकानन्द जी महिला समाज की दशा से चिंतित, देश व समाज की भलाई महिला के बगैर असंभव बताया है। सुशीला टाकमोरे के काव्य–सग्रंह 'स्वातिबूंद और खारे मोती में विद्रोहणी की ध्वनि सुनाई पड़ती है।

''माँ–बाप ने पैदा किया था गूंगा
परिवेश ने लगंडा बना दिया
चलती रही परिवाटी पर
बैसाखिया/चरमराती है।
अधिक बोझ से अकुलाकर
विस्कारित मन हुकांरता है।
बैसाखियों को तोड़ दूं।''[2]

उपर्युक्त कविता नारी की वास्तविकता दर्शाती है। कवि रघुवीर सहाय जी ने नारी को अपने लेखन अनेक समस्याओं का विषय बनाया है। वह कहते है

''नारी बेचारी है
पुरूष की मारी
तन से क्षुदित है
लपककर झपक कर
अंत में चित है।''[3]

उपर्युक्त कविता में 'बेचारी' शब्द दयनीय दशा की ओर संकेत करता है। नारी अपने अधिकारों के लिए लड़ नही पाती। सरकार ने महिला सशक्तिकरण के रूप में घोषित किया है। अब नारी अपने अधिकारों के लिए लड़ेगी।

नारी लेखिकाओं का योगदान

नारी विमर्श ने आठवे दशक तक आते–आते एक आंदोलन का रूप ले लिया। हिन्दी महिला लेखिकाओं मे उल्लेखनीय है। मृदुला गर्ग, कृष्णा अग्निहोत्री, मंजुला भगत, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, सुनीता जैन, प्रभा खतान, अल्का सरावेगी, आदि। इन सभी लेखिकाओं ने नारी की समस्याओं का अंकन संजीदगी से किया है।

स्त्री की दशा पर अनेक समाज सुधारकों ने चिंता व्यक्त की तथा उन्हें दूर करने का प्रयास भी किया। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन तथा अनेक संगठनों ने नारी की शिक्षा की और बल दिया, जिसका परिणाम सकारात्मक आया। वंदना वीथिका के शब्दों में ''नारियों के लिए सबसे बड़ा अभिशाप उनकी अशिक्षा थी और उनकी परतंत्रता का प्रमुख कारण उनकी आर्थिक स्वतंत्रता का अभाव था। आज स्थिति परिवर्तित हुई है। आज हर क्षेत्र का द्वार लड़कियों के लिए खुला है। वे हर जगह प्रवेश पाने लगी है। जमी से आसमां तक पृथ्वी से चांद तक (कल्पना, चावला, सुनीता विलियम) उनकी पहुंच है।''[4]

आज प्रत्येक क्षेत्र में महिला अपनी भागीदारी निभा रही है। चाहे वह आर्थिक हो, राजनीतिक हो, सामाजिक या सांस्कृतिक। फिर उसके बाद यह लड़ाई क्यों? लेकिन वह यदि स्वतंत्रता चाहती है तो उसे पितृसता का विरोध कर पारम्परिक बेडियों को तोड़ना होगा। बींसवी शताब्दी के अंतिम दशक में नारी को अपने विचार प्रकट करने का सुअवसर मिला। भूमण्डलीकरण ने सभी वर्ग के शिक्षित स्त्रियों को घर से बाहर निकलने का अवसर दिया। इसके फलस्वरूप स्त्री अपने वर्णित क्षेत्रों में दावेदारी की ओर स्वावलम्बन के शीघ्र प्रयास भी सामने आए। नारी–विमर्श स्वतत्रंता के बाद की संकल्पना हैं। स्त्री के प्रति हो रहे अन्याय के प्रति संघर्ष है।

डॉ. रणभिरकर के शब्दों में –

''स्त्री–विमर्श स्त्री के स्वयं की स्थिति के बारे में सोचने और निर्णय करने का विमर्श है। सदियों से होते आए शोषक और दमन के प्रति स्त्री चेतन ने ही स्त्री–विमर्श को जन्म दिया है।''[5]

स्त्री समाज को पितृसतात्मक व्यवस्था ने हमेशा अधंकारमय जीवन जीने को मजबूर किया है। लेकिन आज की नारी को अच्छे–बुरे का ज्ञान है। इसीलिए अब वह इस व्यवस्था का बहिष्कार कर स्वच्छंदात्मक जीवन जीने को आतुर दिखाई दे रही है। नारी अस्तित्व को लेकर विभिन्न लेखकों ने अपने–अपने विचार प्रकट किए है।

तुलसीदास ने, ''ढोल गवार, शुद्र, पशु, नारी–सकल ताडना के अधिकारी'' कहकर नारी को प्रताड़ना के पात्र समझा है तो मैथिली शरण गुप्त जी ने अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आंचल में है दूध और आंखों में पानी, कहकर नारी की स्थिति पर चिंता व्यक्त की।

अब स्थिति बदल गई है। छठी शताब्दी से पहले केवल पुरूष लेखकों का ही आधिपत्य था,

महिला लेखिकाओं का उपहास उड़ाया जाता था। आठवें दशक के आते–आते महिला लेखिकाओं की बाढ़ सी आ गई। लेखिका सीमोन द बोउआर का कथन है– ''स्त्री की स्थिति अधीनता की है। स्त्री सदियों से ठगी गई है और यदि उसने कुछ स्वतंत्रता हासिल की है तो बस उतनी ही जितनी पुरूष ने अपनी सुविधा के लिए उसे देनी चाही। यह त्रासदी उस आधे भाग की है, देनी चाही। यह त्रासदी उस आधे भाग की है, जिसे आधी आबादी कहा जाता है।''[6]

नारी मुक्ति से जुडे अनेक प्रश्न, उन प्रश्नों से जुडी बेबसी और नारी की मन स्थिति का चित्रक अनेक स्तरों पर हुआ है।'' साठ के दशक और उसके संघर्ष का अधिकांश इतिहास जागरूक होती हुई स्त्री का अपना रचा हुआ इतिहास हैं नगरों एवं महानगरों में शिक्षित एवं नवचेतना युक्त स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया था जो समाज के विविध क्षेत्र में अपनी कार्य क्षमता प्रमाणित करने के लिए उत्सुक था।''[7]

हिंदी लेखिकाओं ने अपने लेखन में नारी की अनेक समस्याओं को अपना विषय बनाया है। कृष्का सोबती की मित्रों मरजानी, मन्नू भण्डारी–आपका बंटी, ममता कालिया–बेघर, अमृता प्रीतम–रसीदी टिकट, मुदुला गर्ग–कठ गुलाब, उषा प्रियवंदा–पचपन खम्बे लाल दीवार आदि में नारी संघर्ष को दिखाया है। डॉ. ज्योति किरण को शब्दों में ''इस समाज में जब स्त्रिया अपनी समझ और काबलियत जाहिर करती है तब वह कुलच्छनी मानी जाती है, जब वह खुद विवेक से काम करती है तब मर्यादाहीन समझी जाती है। अपनी इच्छाओं अरमानों के लिए जब वह आत्मविश्वास के साथ लड़ती है और गैर समझौतावादी के साथ लड़ती है और गैर समझौतावादी बन जाती है, तब परिवार और समाज के लिए वह चुनौती बन जाती है।''[8]

यदि साहित्य में कोई सामाजिक दायित्व है तो हिंदी साहित्य में स्त्री–विमर्श पर स्त्री देह को बेचने व स्त्री को यौन वस्तु के रूप में तबदील कर दिए जाने की जो पूंजीवादी पितृसतात्मक बाजारवादी रणनीति काम कर रही है उससे नारी मुक्त क्यों नहीं है।

साहित्य में महिला लेखन के रूप में कहानियों, आत्मकथाओं कविताओं में स्त्री की दैहिक पीड़ा से दूर जाकर उसका वर्गीय लैगिंक व जातीय पीड़ा का वास्तविक रूप प्रतिबिबित क्यों नहीं हो पा रहा है? स्त्री साहित्य के प्रश्नों में हिंदी आलोचना में गैर–अकादमिक एवं उपेक्षापूर्ण रवैया क्यों मौजूद है। साठ के दशक में पुरूष वर्चस्ववाद के विरूद्ध उठ खडे हुए स्त्रियों के प्रबल आंदोलन को नारीवादी आंदोलन कहा गया। नारीवादी आंदोलन एक राजनीतिक आंदोलन है जो स्त्री की सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक स्वतंत्रता का पक्षधर है। स्त्री मुक्ति केवल स्त्री मुक्ति का प्रश्न नहीं है बल्कि संपूर्ण मानवता की मुक्ति की शर्त है। वास्तव में यह अस्मिता की लड़ाई है। यह साबित भी हुआ है कि आधी आबादी की शिरकत के बगैर क्रातियाँ सफल नहीं हो सकती।

राष्ट्रीय स्वंतत्रता आंदोलन में जनता की माँग के साथ–साथ स्त्री मुक्ति का स्वप्न भी देखा जा रहा था। स्वतंत्र राष्ट्र ने महिला आंदोलन को विश्वास दिलाया कि बड़े उदेश्यों की प्राप्ति के बाद इनके मुद्दे स्वतः ही हल हो जाएंगे। परंतु स्वतंत्रता के बाद भी स्त्री समस्या ज्यों कि त्यों बनी

है। स्त्री आंदोलन को स्वयं चुनौतियों से लड़कर अपनी मुक्ति का मार्ग खोजना होगा।

निष्कर्ष :– निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि नारी प्राचीन काल से ही पीडित व शोषित रही है। पुरूष प्रधान समाज हमेशा से उसे दबाकर रखना चाहा। कभी घर की इज्जत तो कभी देवी कहकर घर की चार दीवारों के अन्दर ही कैद रखा।

संदर्भ सूची

1. आजकलः मार्च 2013–पृष्ठ 20
2. वही, पृष्ठ – 29
3. पंचशील शोध–समीक्षा–पृष्ठ 82
4. आजकल : मार्च 2013 – पृष्ठ 27
5. पंचशील शोध– समीक्षा – पृष्ठ 87
6. आजकल : मार्च 2013 –पृष्ठ–24
7. आजकल : मार्च 2011–पृष्ठ 25
8. पंचशील शोध– समीक्षा–पृष्ठ–61